बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 132

आधी सदी के बाद क्या ?

देश के 14 बैंकों (सन 1969 में 50 करोड़ रुपये से अधिक वाले) के राष्ट्रीयकरण के 50 साल हो जाने के बाद कई टीकाकार इस बात पर बहस कर रहे हैं कि इंदिरा गांधी ने जो किया वह अच्छा था या बुरा। यह सवाल गलत है लेकिन इसका संक्षिप्त जवाब है : यह अच्छा और बुरा दोनों था। इसने बैंकों का दायरा बढ़ाने में मदद की और इससे राष्ट्रीय बचत दर में इजाफा हुआ। परंतु इसकी कीमत करदाताओं को चुकानी पड़ी क्योंकि इन बैंकों को लगातार नई पूंजी की आवश्यकता होती है। राष्ट्रीयकरण के पीछे इंदिरा गांधी का इरादा क्या था, यह भी अब कोई प्रासंगिक सवाल नहीं है। हर कोई जानता है कि इसके पीछे राजनीतिक वजह थीं लेकिन स्पष्ट लोकप्रियता के भी अपने लाभ हैं। आज सही सवाल यह है कि अब क्या? मुद्दा यह होना चाहिए कि सरकारी बैंकों में दिक्कत है। उनका कर्ज संबंधी रिकॉर्ड सारे बैंकिंग तंत्र में सबसे खराब है, तकनीक बदलाव के मामले में वे काफी पीछे छूट गए हैं और निजी क्षेत्र के बैंकों की तुलना में उपभोक्ताओं के भी कम अनुकूल हैं। यहां तक कि खुदरा जमा करने वाले भी अब निजी बैंकों का रुख करने लगे हैं। यह सरकारी बैंकों के लिए बहुत घातक हो सकता है। परंतु राजनीतिक वजहों से इन बैंकों का निजीकरण अभी भी दूर है। किसी भी हालत में यह संपूर्ण हल भी नहीं है। निजी क्षेत्र में एचडीएफसी बैंक जैसे निजी ऋणदाताओं ने जहां शानदार प्रदर्शन किया है, वहीं विफलताओं के उदाहरण भी हैं। येस बैंक के शेयरों की कीमत में जबरदस्त गिरावट देखने को मिल चुकी है और उसे तत्काल नई पूंजी की आवश्यकता है।

यह बात हमें बताती है राष्ट्रीयकरण के पहले निजी बैंकों में क्या होता था। इसी प्रकार आईएलऐंडएफएस तथा डीएचएफएल जैसे बड़े शैडो बैंक द्वारा किए गए डिफॉल्ट तथा अन्य डिफॉल्ट की आशंका बताती है कि वित्तीय क्षेत्र में निजी स्वामित्व सफलता की गारंटी नहीं है। उस लिहाज से देखा जाए तो सरकार के हल अब तक आकलन से बाहर हैं। बिना प्रदर्शन में सुधार के बार-बार नई पूंजी डालना वैसा ही है जैसे अंधे कुएं में पैसा डुबाना। यह भी स्पष्ट नहीं है कि भारतीय रिजर्व बैंक ने अपनी निगरानी प्रक्रिया पर कड़ी दृष्टि डाली है या नहीं क्योंकि गड़बड़ी के इस स्तर तक पहुंचने में इस बात की भी भूमिका है। इस समस्या का हल कहीं और से ही आना होगा। हमें देखना होगा कि दूरसंचार और नागरिक उड्डयन क्षेत्र में क्या हुआ। इन क्षेत्रों के पुराने कारोबारी अपने हालात से जूझते रहे जबकि नए निजी कारोबारियों ने बाजार पर कब्जा कर लिया। किसी कंपनी का निजीकरण नहीं किया गया। कई नए निजी कारोबारी भी प्रतिस्पर्धा का सामना नहीं कर सके। जबकि सरकार पुरानी सरकारी कंपनियों का मालिकाना भी रखे हुए है और उन्हें धन भी मुहैया करा रही है। जब तक सरकार अपने हाथ खींचेगी और अंतिम तौर पर बिक्री का निर्णय करेगी तब तक संभावित खरीदारों के लिए इनमें कुछ बचेगा नहीं। बैंकिंग क्षेत्र का निजीकरण किया जा रहा है। महज पांच वर्ष पहले सरकारी बैंकों का जमा और अग्रिम देश के निजी बैंकों के जमा और अग्रिम के चार गुना हुआ करता था। अब इनका जमा निजी बैंकों से केवल 2.2 गुना और अग्रिम या ऋण केवल 1.8 गुना ज्यादा है। वृद्धि संबंधी जमा और बकाये के मामले में हालात नाटकीय ढंग से बदल चुके हैं। गत वर्ष निजी बैंकों ने सरकारी बैंकों की तुलना में दो से तीन गुना ज्यादा ऋण वितरित किया। अगर निजी बैंक वृद्धि के वाहक की भूमिका में आ जाएं तो उन्हें सरकारी बैंकों जितना बड़ा और महत्त्वपूर्ण होने में ज्यादा वक्त नहीं लगेगा। वे इस क्षेत्र के अगुआ बन जाएंगे। इस बीच कुछ समय से यह भी सच है कि सर्वाधिक मूल्यवान निजी बैंक की कुल परिसंपत्ति सबसे बड़े सरकारी बैंक यानी भारतीय स्टेट बैंक से अधिक है। शेष सरकारी बैंकों का कुल आकार मिला दिया जाए तो भी वे उस निजी बैंक के आसपास ही पहुंच पाते हैं जो सन 1991 में पैदा भी नहीं हुआ था। ऐसा इसलिए क्योंकि निवेशकों ने अपनी प्राथमिकता स्पष्ट कर दी है: अच्छे निजी बैंकों की वित्तीय स्थिति लगातार सुदृढ़ हो रही है जबकि सरकारी बैंकों की स्थिति निरंतर शर्मनाक होती जा रही है। सरकार के लिए भी केवल इस प्रक्रिया को तार्किक परिणति तक पहुंचाना ही पर्याप्त नहीं है क्योंकि बैंक विमानन और दूरसंचार कंपनियों की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। विलय, चयनित बिक्री या कमजोर बैंकों पर संकीर्ण बैंकिंग प्रतिबंधों के माध्यम से ही सही उसे एक ऐसा वित्तीय क्षेत्र सुनिश्चित करना चाहिए जिसकी सेहत स्वामित्व से तय नहीं हो। *(स्पष्टीकरण: कोटक परिवार द्वारा नियंत्रित कंपनियों की बिज़नेस स्टैंडर्ड में बड़ी शेयरधारिता है।)*

साप्ताहिक मंथन

टी. एन. नाइनन

अजय मोहंती

सरकार का विदेशी ऋण: क्यों व कैसे ?

विदेशी निवेशकों के साथ बेहतर रिश्ते इसलिए भी मायने रखते हैं क्योंकि जब बात लंबी अवधि के ऋण संबंधी लक्ष्यों की आती है तो वे मददगार साबित हो सकते हैं। विस्तार से जानकारी दे रहे हैं **अजय शाह**

सरकार की विदेशी ऋण लेने की मंशा के पक्ष में तीन कारण हैं। कई बार यह सरकार को सस्ता ऋण सुनिश्चित करेगा। इसकी वजह से ऐसी संदर्भ दर तैयार होगी जो देश के कारोबारी घरानों की विदेशी ऋण मिलने की क्षमता को बेहतर बनाएगा। सबसे महत्त्वपूर्ण बात, जब भारत संकट में है, तो उस स्थिति में यह सस्ती दर पर भारी कर्ज सुनिश्चित करने का माध्यम है। यहां दो बातों का ध्यान रखना होगा। पहला, ऋण प्रबंधन के लिए बेहतर संस्थागत प्रावधानों की जरूरत है। दूसरा, हमें विदेशी निवेशकों को बनाए रखकर और उनका भरोसा जीतकर लंबी पारी खेलनी है।

मान लेते हैं भारत सरकार के पास ऋण के दो माध्यम हैं जो पूरी तरह सक्रिय और हर वक्त व्यवहार्य हैं: मुंबई में रुपये में उधारी लेने की और लंदन में डॉलर में उधारी लेने की। दोनों जगह कीमतों में उतार-चढ़ाव आता है। लंदन का मूल्य अधिक आकर्षक होगा और ऐसी उधारी को प्राथमिकता दी जाएगी। विदेशी ऋण कार्यक्रम की शुरुआत के साथ हम इसे वैकल्पिक बनाकर इसका लाभ ले सकते हैं।

दूसरा लाभ विदेशों से ऋण लेने वाली तमाम कंपनियों की बाह्य सकारात्मकता से जुड़ा है। लंदन में सरकार द्वारा जारी डॉलर बॉन्ड में कारोबार से नकदी का प्रतिफल तैयार हो सकता है। अगर ऐसा होता है तो यह एक ऐसी संदर्भ दर तैयार कर सकता है जिसके समक्ष सभी भारतीय कारोबारी कर्जदारों का मूल्यांकन होगा। विदेशी ऋण लेने की इच्छुक तमाम भारतीय कंपनियों को बेहतर दर मिलेगी।

तीसरी और सबसे अहम बात कठिन समय के लिए है। स्वस्थ सार्वजनिक वित्त में अधिकांश वर्ष मामूली ही सही लेकिन प्राथमिक अधिशेष रहता है। परंतु यदाकदा हर देश को दिक्कत का सामना करना ही पड़ता है। ऐसे दिनों में प्राथमिक घाटे में इजाफा होता है और उधारी बढ़ती है। बहरहाल, जब भारत ऐसी किसी आपदा का सामना करता है तो उसे घरेलू स्तर पर नकदी जुटा पाना मुश्किल होगा। ऐसे वक्त विदेशी ऋण का इस्तेमाल करना एकदम उपयुक्त कदम है। आमतौर पर विदेशों में रहने वाले कर्जदाता भारत में आई किसी भी विपत्ति से महफूज रहेंगे और इसलिए ऋण देने का बेहतर जरिया भी। घरेलू कर्जदाता तो उस हालत में खुद दिक्कत से जूझ रहे होंगे।

इन लाभ को हासिल करने के क्रम में भी दो सावधानियां बरतनी होंगी। पहली समस्या सार्वजनिक ऋण प्रबंधन की संस्थागत व्यवस्था में आती है। फिलहाल, ऋण को लेकर सरकारी नीति के बारे में कोई एक राय नहीं है। ऐसे में पूरी तस्वीर सामने नहीं आती और ऋण के मौद्रिक घटक के बारे में निर्णय लेना आसान नहीं रहता। सरकार में ऐसी कोई जगह नहीं है जो यह समझने में सक्षम हो कि लंदन में भारत सरकार के डॉलर संदर्भित बॉन्ड को लेकर नकदी प्रतिफल कर्व कैसे बनता है।

जरूरत इस बात की है कि सरकारी ऋण प्रबंधन एजेंसी गठित की जाए जो वित्त मंत्रालय के अधीन निवेश बैंकर की भूमिका में रहे। इससे सरकार की तमाम उधारी को लेकर एकीकृत नजरिया रहेगा और तमाम रास्ते नजर आएंगे।

कई पर्यवेक्षक इस बात को लेकर चिंतित रहे हैं कि विदेशी ऋण खतरनाक है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि आप कितना ऋण लेते हैं। देश के मौजूदा हालात को देखते हुए अगर 25 अरब डॉलर का विदेशी ऋण लिया जाता है तो वह जीडीपी के एक फीसदी के बराबर होगा। इतनी रकम कोई जोखिम नहीं होगी बल्कि यह सीखने का मौका होगा। इसके साथ ही इस ऋण के जोखिम और इसके प्रबंधन के लिए ऋण प्रबंधन एजेंसी की भी आवश्यकता होगी। खासतौर पर तब जबकि उधारी की राशि बहुत अधिक हो।

ऋण प्रबंधन एजेंसी की बात करें तो उसका लक्ष्य शंकालु निवेशकों के साथ दीर्घकालिक रिश्ते कायम करना है। हमें किसी बात को लेकर कोई भ्रम नहीं होना चाहिए। फिलहाल सरकारी बॉन्डों में से अधिकांश जबरन बेचे जा रहे हैं। बैंक, बीमा कंपनियां, ईपीएफओ, एनपीएस और अब म्युचुअल फंड तक को सरकारी बॉन्ड खरीदने के लिए मजबूर किया जा रहा है। जरूरत पड़ने पर भारत सरकार मनमाने बदलाव कर सकती है लेकिन विदेशी निवेशक इससे परे हैं और उन्हें लुभाना होगा। इसके लिए सरकार को एकदम अलग व्यवहार करना होगा।

इसके लिए चार काम करने होंगे: निवेशकों के साथ रिश्ते कायम करना, कठिन प्रश्नों के जवाब देना, राजकोषीय स्थिति दुरुस्त करना और डेटा की गुणवत्ता में सुधार करना। जब हम इन चार समस्याओं में से एक या अधिक में गलती करते हैं तो विदेशी ऋण की लागत बढ़ेगी। एक बार स्वैच्छिक कर्जदाताओं के आगमन के बाद हमारा अपना हित इन समस्याओं के हल से जुड़ जाएगा।

विदेशी निवेशकों के साथ रिश्ता मजबूत बनाना विदेशी ऋण के दीर्घकालिक लक्ष्य की दृष्टि से अहम है। इसके लिए पहले नियमित ऋण लेने का भरोसा तैयार करना होगा और कर्ज समय पर चुकाना होगा। जब ऐसा कई बार हो जाए तो हमें विदेशी निवेशकों का भरोसा और सम्मान दोनों हासिल हो जाएगा। विकसित अर्थव्यवस्था वाले देश आसानी से बड़ी राशि का ऋण ले लेते हैं वह भी कम ब्याज दर पर क्योंकि वे लंबे समय से ऋण ले रहे हैं और उसे सफलतापूर्वक चुका भी रहे हैं। ब्रिटेन ने पिछली बार 1688 में कर्ज पर डिफॉल्ट किया था।

समय से पहले ऐसा रिकॉर्ड तैयार करना बेहतर होगा तभी हम संकट के समय निवेशकों का भरोसा जीत पाएंगे। अगर ऋण प्रबंधन एजेंसी विदेशी निवेशकों के साथ सतही संपर्क में रहेगी तो वे संकट के समय भारत सरकार को ऋण देने से हिचकिचाएंगी। जबकि उनके साथ गहन संपर्क, संकट के समय विदेशी कर्जदाताओं से बेहतर संसाधन मिलना सुनिश्चित करेगा भले ही ब्याज दर थोड़ा ज्यादा चुकानी पड़े।

भारत सरकार स्वैच्छिक और विदेशी कर्जदाताओं से जिस हद तक बेहतर संबंध कायम करेगी, उतना ही बेहतर होगा। ऐसा करने से घरेलू ऋण परिदृश्य में भी बदलाव आएगा। एक बार फिर अहम अंतर्दृष्टि यही है कि किसी भी संकट की स्थिति में बढ़ी हुई उधारी का लक्ष्य स्वैच्छिक कर्जदाताओं से ही हासिल हो सकता है।

(लेखक नई दिल्ली स्थित नैशनल इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक फाइनैंस ऐंड पॉलिसी में प्रोफेसर हैं।)

मीडिया के स्वामित्व ढांचे में सुधार से ही आएगी स्वतंत्रता

मीडिया मंत्र

वनिता कोहली-खांडेकर

भय एकदम साफ झलक रहा था। घाना के एक पत्रकार ने अपना चेहरा छिपाते हुए अपनी बात रखी। कई दूसरे पत्रकारों ने भी अपनी चिंता, डर और कुंठा को उजागर किया। लंदन में पिछले हफ्ते आयोजित वैश्विक मीडिया स्वतंत्रता सम्मेलन में कुछ ऐसी ही तस्वीर दिखी। ब्रिटेन और कनाडा की सरकारों के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित इस सम्मेलन में पत्रकारों के अलावा वकील, नेता, मंत्री और राजनयिक भी ऐसी बातें कर रहे थे। सबका यही कहना था कि यह दुनिया अब पत्रकारों के लिए अधिक प्रतिकूल हो चुकी है।

पत्रकारों की अंतरराष्ट्रीय संस्था 'रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स' ने वर्ष 2018 को पत्रकारों के लिए सबसे खतरनाक साल करार दिया है। ब्रिटिश सरकार की एक वेबसाइट के मुताबिक यूनेस्को ने भी पिछले साल 99 पत्रकारों की हत्या, 348 को जेल में डालने और 60 अन्य को बंधक बनाए जाने की पुष्टि की है।

इन घटनाओं के पीछे तानाशाही प्रवृत्ति वाली सरकारों से लेकर संस्थागत सहयोग की कमी भी वजह है। अमेरिका जैसे मजबूत संस्थागत आधार वाले लोकतांत्रिक देशों में भी अब पत्रकारों को नियमित रूप से डराया-धमकाया और जलील किया जाता है। महिला पत्रकारों के साथ दुर्व्यवहार की घटनाओं पर भारत का भी जिक्र किया गया। व्हाट्सऐप के जरिये फैलाई जाने वाली अफवाहों के चलते भीड़ द्वारा पीट-पीटकर मार डाले जाने की घटनाओं और वर्ष 2017 में महिला पत्रकार गौरी लंकेश की हत्या का भी मुद्दा उठा। समाज में नफरत बढ़ाने, फर्जी खबरें फैलाने और ध्रुवीकरण में सोशल मीडिया की भूमिका भी चर्चा का विषय बनी। मीडिया की आजादी बचाए रखने के तरीके सुझाना भी इस सम्मेलन का एक मकसद था। एक अहम सुझाव वैश्विक कानूनी पैनल बनाने को लेकर आया। ब्रिटेन के विदेश मंत्री जेरमी हंट ने कहा, 'पत्रकारों के खिलाफ बढ़ती हिंसा पर काबू करने के लिए राजनीतिक इच्छा, राजनयिक दबाव और हालात सुधारने में देशों की मदद के लिए एक कानूनी ढांचा बनाने की भी जरूरत है। उच्च स्तर के इस स्वतंत्र पैनल में दुनिया के बेहतरीन कानूनी विशेषज्ञों को जगह मिले और वे मीडिया के साथ दुर्व्यवहार रोकने वाला ढांचा तैयार करेंगे।'

ऑक्सफर्ड स्थित रॉयटर्स पत्रकारिता अध्ययन संस्थान के शोध निदेशक रेस्मस क्लीस नील्सन ने मीडिया के कारोबारी परिप्रेक्ष्य पर विस्तार से अपनी बात रखी। उन्होंने कहा कि गुणवत्ता से भरपूर खबर की मांग एवं उसकी आपूर्ति का मुद्दा काफी अहम है। उनका कहना एकदम सही है। अच्छी गुणवत्ता वाली पत्रकारिता के लिए ढेर सारे पैसों की जरूरत होती है लेकिन पाठक हमेशा उसका भुगतान करने को तैयार नहीं होते हैं। द फाइनैंशियल टाइम्स या द इकनॉमिस्ट जैसे अखबार जरूर इसके अपवाद हैं।

भले ही भारत में अखबार संपादकीय रूप से एक हद तक अच्छा काम कर रहे हैं और वे मुनाफे में भी चल रहे हैं लेकिन विज्ञापनों पर उनकी अतिशय निर्भरता का नतीजा यह होता है कि वे विज्ञापनदाता से दबाव आने का पहला संकेत मिलते ही झुक जाते हैं। भारत के करीब 400 समाचार चैनलों में से आधे चैनलों का स्वामित्व ऐसे लोगों के हाथ में है जो मीडिया स्वामित्व को प्रभाव, उगाही या अनुचित लाभ का जरिया मानते हैं। ये चैनल सनसनी पैदा करने वाली रिपोर्ट दिखाते हैं, उनके स्टूडियो में बैठे ऐंकर तीखी बहस करते हैं और फालतू मुद्दों पर चीख-चीखकर बोलते हैं।

वैश्विक स्तर पर मीडिया स्वामित्व का ढांचा एक सशक्त समाचार परिवेश बनाने में बड़ी भूमिका निभाता है। द इकनॉमिस्ट और द गॉर्डियन का स्वामित्व आंशिक रूप से ट्रस्ट के पास है। बीबीसी की फंडिंग ब्रिटेन के टीवी उपभोक्ताओं द्वारा दी जाने वाली लाइसेंस फीस से होती है। इस तरह दुनिया के बेहतरीन मीडिया ब्रांड में ऐसा स्वामित्व ढांचा है जो उन्हें आर्थिक रूप से स्वतंत्र बनाता है। हम जब तक मीडिया में स्वामित्व का बढ़िया ढांचा प्रोत्साहित नहीं करेंगे और बुरे ढांचे को हतोत्साहित नहीं करेंगे तब तक यह समस्या जारी रहेगी। मसलन, मीडिया संस्थानों पर नेताओं, सरकारी निकायों, धार्मिक संगठनों या सरकार के स्वामित्व पर सख्ती बरतने से मदद मिलेगी। राजस्व, लागत, स्वामित्व और शेयरधारिता पैटर्न संबंधी विवरणों के बारे में पारदर्शिता पर बल देना भी फायदेमंद होगा। जमीनी हकीकत दिखाने वाली रिपोर्टिंग में अखबारों, वेबसाइट और समाचार चैनलों के लिए निवेश को सहज बनाया जाए- चाहे वह कर अवकाश हो या बेहतरीन पत्रकारिता संस्थानों को अनुदान देना हो। मीडिया साक्षरता देने वाले स्कूलों एवं संस्थानों को विशेष प्रोत्साहन भी दिए जा सकते हैं। मेरे हिसाब से विज्ञापनदाता साक्षरता के लिए पाठ्यक्रम चलाने पर अलग प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। अगर विज्ञापनदाता फर्जी खबरों एवं असली खबरों में फर्क कर सकें और फर्जी खबरों से पैसे निकालने लगें तो ऐसी गलत खबरें परोसने वाले मीडिया समूह अगर खत्म नहीं तो कम जरूर हो जाएंगे। भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण ने भी 2014 की एक रिपोर्ट में ऐसी अनुशंसाएं की थीं।

हालांकि इनमें से कोई भी कदम किसी भी सरकार द्वारा नहीं उठाया जा सकता है। भारत के लिए ब्रिटेन के संचार नियामक ऑफकॉम की तरह की व्यवस्था कारगर हो सकती है जो एक संसद-समर्थित स्वतंत्र मीडिया नियामक होगा। मीडिया की स्वतंत्रता एवं अच्छी पत्रकारिता के प्रोत्साहन के लिए मीडिया कंपनियों के मालिकों को यह स्वीकार करना होगा कि स्व-नियमन का अब तक अपनाया गया तरीका नाकाम हो चुका है। उन्हें जल्द ही इसके विकल्पों के बारे में सोचना शुरू कर देना चाहिए। अगर भौतिक ढांचे का किसी देश की आर्थिक प्रगति पर कई गुना असर होता है तो सूचना एवं समाचार ढांचे का भी उसकी बौद्धिक पूंजी यानी लोगों पर ऐसा ही असर होता है। अगर हमारे लोकतंत्र की गुणवत्ता गलत जानकारियों की चपेट में है तो मीडिया को इसका मुकाबला करने के लिए अच्छी पत्रकारिता को भी सशक्त बनाना होगा।

कानाफूसी

नीति आयोग का नवाचार!

अगर आपको लगता है सरकारी विज्ञापन रूढ़िवादी और परंपरावादी लोगों द्वारा अपने ही जैसे अन्य लोगों के लिए तैयार किए जाते हैं तो आप गलत हैं। नीति आयोग के एक हालिया विज्ञापन ने अपने नवाचार के कारण लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचा। ट्विटर पर दिए गए इस विज्ञापन में कहा गया था कि सरकार के इस थिंक टैंक को वरिष्ठ विशेषज्ञों और व्यवहारात्मक अर्थशास्त्र के जानकारों की जरूरत है। विज्ञापन की भाषा बहुचर्चित फिल्म रंग दे बसंती से प्रेरित थी। नीति आयोग का यह विज्ञापन कुछ इस तरह शुरू हुआ-कोई भी देश परफेक्ट नहीं होता, उसे परफेक्ट बनाना पड़ता है। सन 2006 में आई रंग दे बसंती में एक संवाद था-कोई भी देश परफेक्ट नहीं होता..उसे बेहतर बनाना पड़ता है।

नाराज बसपा विधायक

कर्नाटक और गोवा की घटनाओं पर करीबी नजर रखने के बाद मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री कमलनाथ ने कांग्रेस के सभी विधायकों तथा पार्टी का समर्थन कर रहे अन्य दलों के तथा निर्दलीय विधायकों से कहा है कि वे राज्य की राजधानी में बने रहें। कमलनाथ ने बुधवार की देर रात विधायकों को संबोधित किया और उनसे कहा कि वे भोपाल से बाहर नहीं जाएं। परंतु बहुजन समाज पार्टी (बसपा) के विधायक संजीव कुशवाहा शहर में होने के बावजूद इस बैठक में शामिल नहीं हुए। सबको मालूम है कि बसपा के दोनों विधायक रामबाई और कुशवाहा राज्य सरकार और कुछ मंत्रियों से बहुत नाखुश हैं। रामबाई सार्वजनिक रूप से कह चुकी हैं कि उनके परिजनों के खिलाफ झूठे मामले दर्ज किए जा रहे हैं। वह मंत्री पद की इच्छा भी जता चुकी हैं। उधर, कुशवाहा ने गुरुवार को कहा कि कांग्रेस के कुछ मंत्रियों से उन्हें समस्या है और वह मुख्यमंत्री से इस बारे में बातचीत करेंगे।

आपका पक्ष

एनआईए संशोधन विधेयक मंजूर

राज्य सभा से एनआईए संशोधन विधेयक पारित हो गया है। लोकसभा में यह पहले ही पारित हो चुका है। इससे विदेशों में आतंकवादी घटनाओं में भारतीय नागरिकों के प्रभावित होने की स्थिति में एनआईए (राष्ट्रीय जांच एजेंसी) मामला दर्ज कर सकेगी। इसके साथ ही एनआईए अन्य देशों में जाकर जांच कर सकेगी। राज्य सभा में गृह मंत्री अमित शाह ने कहा कि विदेशों में कहीं भी आतंकवादी घटनाओं में भारतीय नागरिक भी हताहत होते हैं और भारतीय दूतावास प्रभावित होते हैं। घटनाओं में जानमाल का नुकसान होता है लेकिन भारत के पास कानूनी कार्रवाई का कोई अधिकार नहीं होता है। घटना के बाद भारतीय अधिकारी वहां जाते हैं तो उनसे पूछा जाता है कि आपके पास कानून कहां हैं। एनआईए कानून के तहत अब विदेशों में जांच हो सकेगी। साह ने बताया कि वर्ष 2014 से जुलाई 2019 तक कुल 195 मामले दर्ज हुए हैं। इनमें से 129 मामलों में आरोपपत्र दाखिल किए गए हैं। ऐसे 44 मामलों में अदालत के फैसले भी आ चुके हैं। इनमें से 41 मामलों में दोषियों को सजा भी हो चुकी है। मामले में 184 आरोपियों को दोषी ठहराया गया है। ये सभी मामले आतंकवादी गतिविधियों से जुड़े मामले हैं। देश में कानून की कमी से कभी आरोपी पर दोषमुक्त हो जाता है जिसका फायदा आतंकवादी उठाते आ रहे हैं। आतंकवादी देश में घुसकर आतंकी घटना को अंजाम देते हैं और भाग जाते हैं। इसके बाद कानून की कमी के कारण उस पर पकड़ नहीं बनाई जा सकती है। जो आतंकवादी घटना के समय पकड़े जाते हैं उन पर मुकदमा चलता है। अब एनआई कानून में संशोधन से ऐसी आतंकवादी घटनाओं को अंजाम देने वाले आतंकियों को सजा मिल सकेगी। इसके बाद आतंकवादी भारत में हमला करने से पहले सोचने पर मजबूर होंगे।

अभिषेक सिन्हा, नई दिल्ली

एनआईए संशोधन विधेयक पिछले दिनों राज्य सभा से पारित हो गया

राष्ट्रीय नागरिक पंजीकरण का मुद्दा

देश के पूर्वोत्तर राज्य में राष्ट्रीय नागरिक पंजीकरण (एनआरसी) चल रहा है। इसका मकसद विदेशी घुसपैठियों की पहचान कर उन्हें उनके देश में वापस भेजना है। ऐसा माना जाता है कि बांग्लादेश से असम में बड़ी संख्या में लोग आ गए थे। देश में असम ऐसा पहला राज्य है जहां एनआरसी है जिसे सबसे पहले 1951 में तैयार किया गया था। देश में विदेशी घुसपैठ की घटनाएं होती रहती हैं। पश्चिम बंगाल में भी बड़ी संख्या में बांग्लादेशी घुसपैठियों की संख्या से इनकार नहीं किया जा सकता है। ऐसे में देशहित के लिए यह जरूरी है। ऐसे लोग भारत में आकर आतंकी गतिविधियों को अंजाम देते हैं। रोहिंग्या मामला इसका उपयुक्त उदाहरण है।

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।